रहें न रहें हम, महका करेंगे...

मजरूह सुल्तानपुरी की जयंती 1 अक्टूबर पर विशेष

गीत जब ज़ुबान पर चढ़ जाते हैं, तो वे सीधे दिल की गहराइयों में उतर जाते हैं. यह गीत के शब्दों का ही जादू है कि वे गीतकार को अमर कर देते हैं. बानगी देखिए-

महबूब मेरे, महबूब मेरे…
तू है तो दुनिया कितनी हसीं है
जो तू नहीं तो कुछ भी नहीं है
महबूब मेरे, महबूब मेरे…

मुहब्बत के जज़्बे से लबरेज़ यह गीत लिखा था मशहूर शायर व गीतकार मजरूह सुल्तानपुरी ने. फ़िल्म 'पत्थर के सनम' के इस गीत में जहां वह महबूब के ज़िन्दगी में होने के अहसास को शब्दों में पिरोते हैं, वहीं फ़िल्म अभिलाषा के गीत में कायनात को खुद में ही समेट लेने चाहते हैं-

वादियां मेरा दामन, रास्ते मेरी बाहें
जाओ मेरे सिवा, तुम कहां जाओगे…

ग़ौरतलब है कि मजरूह सुल्तानपुरी का असली नाम असरारुल हसन ख़ान था. उनका जन्म एक अक्टूबर, 1919 को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जनपद में हुआ था. उनके पिता पुलिस विभाग में उपनिरीक्षक थे. मजरूह सुल्तानपुरी ने दरसे-निज़ामी का कोर्स किया. इसके बाद उन्होंने लखनऊ के तकमील उल तिब्ब कॉलेज से यूनानी पद्धति में डॉक्टरी की डिग्री हासिल की. फिर वह हकीम के तौर पर काम करने लगे, मगर उन्हें यह काम रास नहीं आया, क्योंकि बचपन से ही उनकी दिलचस्पी शेअरो-शायरी में थी. जब भी मौक़ा मिलता, वह मुशायरों में शिरकत करते. उन्होंने अपना तख़ल्लुस यानी उपनाम मजरूह रख लिया. शायरी से उन्हें ख़ासी शोहरत मिली और वह मजरूह सुल्तानपुरी के नाम से विख्यात हुए.

उन्होंने अपना हकीमी का काम छोड़ दिया. एक मुशायरे में उनकी मुलाक़ात मशहूर शायर जिगर मुरादाबादी से हुई. उन्होंने मजरूह सुल्तानपुरी की हौसला अफ़ज़ाई की. साल 1945 में वे एक मुशायरे में शिरकत करने मुंबई गए, जहां उनकी मुलाक़ात फ़िल्म निर्माता एआर कारदार से हुई. कारदार उनकी शायरी पर फ़िदा थे. उन्होंने मजरूह सुल्तानपुरी से अपनी फ़िल्म में गीत लिखने की पेशकश की, लेकिन मजरूह सुल्तानपुरी ने इससे इंकार कर दिया, क्योंकि वह फ़िल्मों के लिए गीत लिखने को अच्छा नहीं मानते थे. जब मजरूह सुल्तानपुरी ने जिगर मुरादाबादी को यह बात बताई, तो उन्होंने सलाह दी कि वह फ़िल्मों के लिए गीत लिखें, इससे उन्हें शोहरत के साथ-साथ दौलत भी हासिल होगी. मजरूह सुल्तानपुरी को जिगर मुरादाबादी की बात पसंद आ गई और फिर उन्होंने फ़िल्मों में गीत लिखना शुरू कर दिया. मशहूर संगीतकार नौशाद ने मजरूह सुल्तानपुरी को एक धुन सुनाई और उनसे उस धुन पर

एक गीत लिखने को कहा. मजरूह सुल्तानपुरी ने उस धुन पर गेसू बिखराए, बादल आए झूम के... गीत लिखा. इससे नौशाद ख़ासे मुतासिर हुए और उन्होंने उन्हें अपनी नई फ़िल्म शाहजहां के लिए गीत लिखने की पेशकश कर दी. मजरूह सुल्तानपुरी ने हर दौर के संगीतकारों के साथ काम किया. वह वामपंथी विचारधारा से ख़ासे प्रभावित थे. वह प्रगतिशील लेखक आंदोलन से भी जुड़ गए थे. उन्होंने 1940 के दशक में मुंबई में एक नज़्म माज़-ए-साथी जाने न पाए, पढ़ी थी. तत्कालीन सरकार ने इसे सत्ता विरोधी क़रार दिया था. सरकार की तरफ़ से उन्हें माफ़ी मांगने को कहा गया, लेकिन उन्होंने माफ़ी मांगने से साफ़ इंकार कर दिया. नतीजतन, उन्हें दो साल की सज़ा हुई और इस तरह उन्होंने अपनी ज़िन्दगी का काफ़ी अरसा मुंबई की ऑर्थर रोड जेल में बिताना पड़ा. गुज़रते वक़्त के साथ-साथ उनके चाहने वालों की तादाद में इज़ाफ़ा होता चला गया. उनका कहना था-

मैं अकेला ही चला था जानिबे-मंज़िल मगर

लोग आते गए और कारवां बनता गया

मजरूह सुल्तानपुरी भले ही फ़िल्मों के लिए गीत लिखते रहे, लेकिन उनका पहला प्यार ग़ज़ल ही रही. उनकी एक ग़ज़ल देखें-

हम हैं मता-ए-कूचा-ओ-बाज़ार की तरह
उठती है हर निगाह ख़रीदार की तरह
इस कू-ए-तिश्नगी में बहुत है कि एक जाम
हाथ आ गया है दौलत-ए-बेदार की तरह
वो तो हैं कहीं और मगर दिल के आसपास
फिरती है कोई शय निगाह-ए-यार की तरह
सीधी है राह-ए-शौक़ पे यूं ही कभी-कभी
ख़म हो गई है गेसू-ए-दिलदार की तरह
अब जाके कुछ खुला हुनर-ए-नाख़ून-ए-जुनून
ज़ख़्म-ए-जिगर हुए लब-ओ-रुख़्सार की तरह
'मजरूह' लिख रहे हैं वो अहल-ए-वफ़ा का नाम
हम भी खड़े हुए हैं गुनहगार की तरह

उन्होंने शायरी को महज़ मुहब्बत के जज़्बे तक ही महदूद न रखकर उसमें ज़िन्दगी की जद्दोजहद को भी शामिल किया. उन्होंने ज़िन्दगी को जहां एक आम आदमी की नज़र से देखा, वहीं उन्होंने ज़िन्दगी को एक दार्शनिक के नज़रिये से भी देखा. उनकी शायरी इस बात का सबूत है. जेल में रहने के दौरान साल 1949 में लिखा उनका फ़िल्मी गीत- एक दिन बिक जाएगा माटी के मोल, जग में रह जाएंगे प्यारे तेरे बोल... ज़िन्दगी की सच्चाई को बयान करता है. दरअसल क़ैद की वजह से उनके परिवार की माली हालत बहुत ख़राब हो गई थी. हालांकि उनकी मदद के लिए कई लोग आगे आए, लेकिन उन्होंने किसी ने भी मदद लेना गवारा नहीं किया. उसी दौरान प्रसिद्ध फ़िल्म निर्माता व अभिनेता राजकपूर ने उनसे मुलाक़ात की और उनसे अपनी फ़िल्म के लिए गीत लिखने को कहा, जिस पर उन्होंने यह गीत लिखा,

जो आज भी खूब पसंद किया जाता है. राजकपूर इस गीत से इतने मुतासिर हुए कि उन्होंने इस गीत को लिखने के लिए उन्हें एक हज़ार रुपये दिए, जो उस वक़्त एक गीत के लिए बड़ी रक़म थी.

जेल से आने के बाद उन्होंने फिर से अपना शायरी का सफ़र शुरू किया. उन्होंने जहां बेहतरीन ग़ज़लें लिखीं, वहीं फ़िल्मों के लिए भी शानदार गीत लिखे. उन्होंने फुटपाथ, आरपार, पत्थर के सनम, अभिलाषा, ममता, पाकीज़ा, सीआईडी, दोस्ती, पेइंग गेस्ट, नौ दो ग्यारह, चलती का नाम गाड़ी, सुजाता, सोलहवां साल, बंबई का बाबू, काला पानी, बात एक रात की, तीन देवियां, अभिमान, ज्वैल थीफ़, तीसरी मंज़िल, बहारों के सपने, प्यार का मौसम, कारवां, हम किसी से कम नहीं, ज़माने को दिखाना है, ऊंचे लोग, अकेले हम अकेले तुम आदि फ़िल्मों के लिए दिलकश गीत लिखकर धूम मचा दी. उनके गीत लोगों की ज़ुबान पर चढ़ गए और कामयाबी उनके क़दम चूमने लगी.

बक़ौल बेकल उत्साही, मजरूह सुल्तानपुरी एक ऐसे शायर थे, जिनके कलाम में समाज का दर्द झलकता था. उन्हें एक हद तक प्रयोगवादी शायर और गीतकार भी कहा जा सकता है. उन्होंने अवध के लोकगीतों का रस भी अपनी रचनाओं में घोला था. इससे पहले शायरी की किसी और रचना में ऐसा नहीं देखा गया था. उन्होंने फ़िल्मी गीतों को साहित्य की बुलंदियों पर पहुंचाने में अहम किरदार निभाया. साल 1965 में प्रदर्शित फ़िल्म ऊंचे लोग का यह गीत इस बात की तस्दीक करता है-

एक परी कुछ शाद सी, नाशाद-सी

बैठी हुई शबनम में तेरी याद की

भीग रही होगी कहीं कली-सी गुलज़ार की

जाग दिल-ए-दीवाना

साल 1994 में उन्हें सिनेमा जगत के सर्वोच्च सम्मान दादा साहब फाल्के पुरस्कार से नवाज़ा गया. यह पुरस्कार पाने वाले वह पहले गीतकार थे. साल 1965 में वह फ़िल्म दोस्ती में अपने गीत- चाहूंगा मैं तुझे सांझ सवेरे… के लिए उन्हें फ़िल्म फ़ेयर पुरस्कार से नवाज़ा गया. इसके अलावा उन्हें साल 1980 में ग़ालिब अवार्ड और साल 1992 में इक़बाल अवार्ड से समानित किया गया था. मजरूह सुल्तानपुरी ने चार दशकों से भी ज़्यादा अरसे तक तीन सौ से ज़्यादा फ़िल्मों के लिए चार हज़ार से ज़्यादा गीत लिखे. उन्होंने नौशाद साहब से लेकर अनु मलिक, जतिन ललित, एआर रहमान और लेस्ली लेविस तक के साथ काम किया.

मजरूह सुल्तानपुरी ने 24 मई, 2000 को इस दुनिया को अलविदा कह दिया, लेकिन उनकी शायरी ने उन्हें अमर कर दिया. फ़िल्म 'ममता' के लिए लिखा उनका यह गीत यह बताने के लिए काफ़ी है कि वह आज भी अपने गीतों के ज़रिये हमारे दिलों में ज़िन्दा हैं-

रहें ना रहें हम, महका करेंगे
बनके कली बनके सबा बाग़े वफ़ा में…
मौसम कोई हो इस चमन में, रंग बनके रहेंगे हम ख़रामां

चाहत की खुशबू यूं ही ज़ुल्फ़ों से उड़ेगी, खिज़ा हों या बहारां
यूं ही झूमते, यूं ही झूमते और खिलते रहेंगे

बनके कली बनके सबा बाग़े-वफ़ा में
रहें ना रहें हम…

(लेखिका स्टार न्यूज़ एजेंसी में सम्पादक हैं)